REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 4 | JANUARY - 2019

"महासमर की पृष्ठभूमि:सामाजिक विभाजन एवं व्यक्ति विकास"

मंजू अरोरा[1] , डॉ. विनोद कुमार [2]
[1]अनुसंधित्सु-कला एवं भाषा विभाग,लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी,फगवाड़ा,पंजाब.
[2]Supervisor , असिस्टेंट प्रोफेसर , लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी.

सारांश (Abstract)

जीवन अनवरत, सतत एवं शाश्वत है | जिसमें जीवन सम्बन्धी मूल्य मानव को निरंतर राह दिखाने वाले प्रकाश पुंज है | जैसे जीवन निरंतन है, सतत है, गतिमान है और सदैव विकास शील है | कदाचित वैसे ही मानव की चेतना, उसका विकास , उसका व्यक्तित्व, उसकी विचार प्रक्रियाएं आदि निरंतर आरोह रूप में बढ़तीं रहती हैं | विकास उर्जा के समान सदैव उच्च चेतना को संबल प्रदान करता है | उसका स्वभाव उर्धगामी है | यदि किसी व्यक्ति ने अपने व्यक्तित्व का व्यक्तिगत रूप से अथवा किसी संस्था ने सामूहिक रूप से अपना विकास करना है तो कोई कारण नहीं कि वह अपनी संस्कृति, अपने शास्त्रों,अपने पूर्वजों के पद चिन्हों एवं उनके दिखाए मार्ग पर चल कर अपना विकास न कर सकें|

मानव ने अपने विकास के साथ साथ अन्यों को भी जाने अनजाने में अपने साथ सन्नद्ध कर लिया है | एक व्यक्ति की आकांक्षाएं उसे स्वयं तक ही सीमित नही रहने देतीं | तो समाज का निर्माण हुआ और अपनी-अपनी आवश्यकताओं के लिए व्यक्ति व्यष्टि से समष्टि के रूप में स्वयं को ढाल कर अग्रसर होने लगा | जब समाज की चेतना, उसके उदाहरण व्यक्ति के आचरण को प्रभावित करतें हैं, तो कुछ नियम-सिद्धांत भी अपने रूप को साकार कर मान्यता प्राप्त करते हैं | यहीं से आरंभ होता है, जीवन का विकास, उसकी सीमायें, उसके मूल्य और अन्ततः मनुष्य की अपरिमित शक्तियों का उद्घाटन | महासमर उपन्यास के पात्र व्यक्ति को और समाज को यही उदाहरण देते हुए दिशा निर्देश प्रेषित करते चलते हैं |

बीज-शब्द(Key words) अनवरत, गतिमान, विकास के सोपान, आरोह-ऊर्जा, चेतना, दिशा निर्देश, शक्तियों का उद्घाटन, मान्य मूल्य, अपरिमित शक्तियां, प्रेषित |

भूमिका (Introduction)

प्राणी की जीवन्तता का प्रमाण है-उसका विकास | ईश्वर की सृष्टि भी इसी नियम का ही प्रदर्शन करती है | जो जीवनमय है वह बढ़ेगा ही | इसमें निरी भौतिक जीव-देह, उसका स्थूल रूप और उसकी शारीरिक विकास की क्रिया-प्रतिक्रिया का प्रमाण तो बिना स्पष्ट उदाहरण के भी दृष्टिगत है | किन्तु व्यक्ति के पास जो अपरिमित उर्जा का भंडार है, उसका विकास तो उसकी जागृत चेतना करती है –करवाती है | समाज की रचना व्यक्ति ने अपने स्वार्थी एवं समाजिक हितों की पूर्ति के लिए की | और विकास के चरणों की ओर कदम बढ़ाए |

विकास के कई आयाम हैं | उन चरणों को प्राप्त करता-लांघता, व्यक्ति अब केवल व्यक्ति न रह कर समष्टि का एक भाग बन गया है | वह एक सामाजिक प्राणी है | समाज की अवहेलना कर के उसका विकास कार्य पूर्ण नहीं हो सकता | तो व्यक्ति समाज के वृहद रूप की एक इकाई है, और इस रूप में समाज के मान्य मूल्यों के अनुरूप ही उसे अपने विकास की ओर देखना होगा |

समाज का निर्माण व्यक्ति ने समारोह पूर्ण ढंग से अपने विकास के अवरोधों को दूर करने के लिया किया | और परिणाम स्वरूप उसमें सफल भी हुआ | किन्तु जिस सर्वजन-हिताय दृष्टिकोण से समाजिक व्यवस्था का रूप गड़ा गया वह फलीभूत

वैसे ही हुआ अथवा उसका कोई विपरीत परिणाम भी हुआ ? क्या समाज सदैव हितकारी सहायक रहा अथवा कुछ विद्रूपताओं का भी जन्म हुआ ? इसकी विवेचना विकास परिदृश्य को समझने के लिए आवश्यक हो जाती है।

विश्लेषण (Explanation)

विकास के अंत:रूप को समझने के लिए महासमर उपन्यास से एक पात्र के चरित्र का उउदाहरण लेते हैं- पात्र का नाम है अक्षय –वर्ण से शूद्र, व्यवसाय से एक साधारण लेपक है। इंद्रप्रस्थ के निर्माण के आरंभिक दिनों में प्रसाद में भोजन की चोरी करते हुए राजकुमार भीम द्वारा पकड़ा जाता है। भीम उसे प्रसाद के निर्माण-कार्य में सहयोग करने का, अन्य लोगों को भी साथ जोड़ने का सुझाव देते हैं। क्योंकि वह जरूरत मंद है ! और हैरान भी ! वह राजकुमार का आमंत्रण स्वीकार करता है और अन्य ग्रामीणों को भी साथ जोड़ता है। अब उसके विकास की बात करते हैं-एक साधारण लेपक, मानसिक रूप से समृद्ध होकर विकास करता है, और विचार मंथन के द्वारा स्वयं के व्यक्तित्व को समझने का प्रयास करता है। वह अपने कार्य की कुशलता से वास्तुकार की कुशलता तक को प्राप्त होता है और समाज में स्वयं के स्थान का विश्लेषण करता है। अब यहाँ उसे जो प्रश्न उद्वेलित करता है, वह है-सामाजिक व्यवस्था और उसके जाति-वर्ण-व्यवसाय गत विभाजन का प्रश्न ! प्रश्न पेचीदा हैं ! व्यक्ति की विडंबना, समाज का जातीय-करण, वर्ण-व्यवस्था, और मनुष्य की जिज्ञासाएं,उसकी अनुवांशिक रूप से बदलती इतर रुचियां,क्षमताएं और व्यवसाय चयन | विचारात्मक द्वन्द तो है ही | आज की वैचारिक क्रांति का परिदृश्य भी उपस्थित करती हैं|

अक्षय अपने विकास को जान- समझ रहा है, वह अब उत्तर चाहता है कि क्या है वह ? वर्ण के अनुसार यदि उसका विकास हुआ है, तो जाति में वह कहाँ स्थान पाता है ?...भीम के प्रोत्साहित करने पर वह ऋषि धौम से अपने प्रश्नों के विषय में चर्चा करने जाता है ।धौम्य उसे वर्ण का आधार समझाते हैं,**"अध्यात्म की दृष्टि में सब जीव समान हैं | परमात्मा प्रत्येक जीव में आत्मा के रूप में विधमान है| यह सारा वर्ग विभाजन समाज ने अपनी सुविधाके लिए किया है | वर्ण का सम्बन्ध वस्तुत: व्यक्ति के स्वभाव और उसकी क्षमता से है | गुणों का सम्बन्ध आनुवांशिकता से होता है, इसलिए समाज में जन्म से वर्ण का निर्धारण भी होता है| जिस परिवार में बालक पलता है, वहां का शिक्षण भी उसकी रुचियों –अरुचियों, क्षमताओं–अक्षमताओं का निर्धारण करता है|**.....यदि पुत्र अपने पिता से उत्तराधिकार में वे ही रुचियाँ तथा वृतियां ग्रहण करता है, वैसी ही क्षमता भी पाता है, और वैसा ही आचरण भी करता है, तथा अपने पिता के ही व्यवसाय तथा जीवन दर्शन को अंगीकार करता है, तो किसी पुनर्विचार की आवश्यकता नहीं होती | **जन्म, वृति, कर्म अथवा व्यवसाय से किसी एक वर्ण से सम्बद्ध होने पर कहीं कोई द्वन्द नहीं जागता|....किन्तु प्रकृति की लीला बड़ी विचित्र है** | अनेक बार पुत्र अपने पिता के सर्वथा विपरीत चलता है |....वह ब्राह्मण पुत्र होकर भी न उतना ज्ञान अर्जित कर सकता है ...न वैसा आचरण कर सकता है |.किन्तु वह व्यवसाय ब्राह्मण का ही करना चाहता है और न ही किसी इतर वर्ण को स्वीकार करना चाहता है | **संकट वहां उत्पन्न होता है | व्यक्ति जनम तो ब्राह्मण कुल में ले, वृति से वह क्षत्रिय हो, और कर्म वह चंडाल का करे, तो उसका वर्ण निर्णय कैसे होगा?"** ..... **"वर्ण की आवश्यकता वहीँ होती है जहाँ व्यवसाय का प्रश्न है जहाँ हम इस बात का निर्णय करना चाहते है कि व्यक्ति की वृति शिक्षा, क्षमता, और आचरण उस व्यवसाय के दायित्वों के अनुकूल है या नही ?"** अब अक्षय का प्रति प्रश्न है कि, **"किन्तु वर्ण का निर्णय तो एक व्यक्ति के जीवन में एक ही बार होगा न** | जब मैं एक बार शुद्र घोषित कर दिया गया, तो फिर मैं ब्राह्मण कैसे हो सकता हूँ ?"[1]

महाभारत अर्थात महासमर: चरित्रों, पात्रों, घटनाओं द्वारा प्रश्न ही नही व्यक्ति, और समाज को सामयिक उत्तर भी देने की पूरी सम्भावनायें प्रस्तुत करता है |

धौम्य अक्षय की समस्या का निवारण करने का प्रयत्न करते हुए उसके वर्ण निर्धारण के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि, **"विकास के माध्यम से !** जिस व्यक्ति का शरीर मात्र एक उपकरण है, वह कुछ सोच समझ नहीं सकता, ...दूसरों का अनुसरण और सेवा ही कर सकता है – वह शूद्र है | वही **व्यक्ति विकास प्रक्रिया में, स्वतंत्र रूप से उत्पादन, व्यवसाय अथवा उद्धम से धर्मपूर्वक धनोपार्जन के योग्य** होकर समाज को समृद्ध करने लगता है, तो वह वैश्य हो जाता है | अपना और अधिक विकास कर, वह समाज के संगठन, रक्षण तथा पालन में समर्थ हो जाता है, तो वह क्षत्रिय हो जाता है ....और वह **अपने स्वार्थ तथा भोग की इच्छा छोड़, ज्ञान के अर्जन,ग्रहण, वितरण, विकास तथा समाज-हित में शास्त्र**

का चिंतन–मनन करने लगता है, तो वह ब्राह्मण हो जाता है|"..... "इसमें कठिनाई क्या है?...ये तो व्यक्ति के विकास के सोपान मात्र हैं |"[2]

सामाजिक मूल्यों को चुनौती देते बहुत ज्वलंत प्रश्न है | एक सामान्य व्यक्ति की समस्या और एक बुद्धिजीवी की दृष्टि का आधार किस तरह भिन्न है | और कैसे निर्णय होगा वस्तुस्थिति का !

प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है | विशेषकर भारतीय व्यवस्थाओं के अनुसार | ऐसी समस्या का सामना कई व्यक्ति करते हैं | परन्तु समाज का उत्तर क्या हो ? व्यक्ति को उसकी अपेक्षाओं के अनुसार भिन्न वर्णानुसार अपनाए अथवा रूढिगत परम्पराओं की लीक पर ही चलता रहे?

एक तपस्वी सन्यासी का इस विषय में क्या विचार है ? उनके अनुसार यदि व्यक्ति की रुचियों, क्षमताओं और व्यवसाय में परिवर्तन आ गया है, तो वर्ण परिवर्तन के लिए उसे समाज की स्वीकृति की क्या आवश्यकता है ? उनके अनुसार "**व्यक्ति स्वयं अपनी वृति और स्वभाव को जानता है, तो वह उसके अनुसार अपना कर्म और व्यवसाय चुन सकता है |"[3]**

पहली बात तो यह है कि समाज के बने नियम इसकी इतनी आसानी से अनुमति देंगे क्या ? दूसरा-समाज इस तथ्य को स्वेच्छा से अपना लेगा क्या ? तृतीय- क्या व्यक्ति इतना ईमानदार है जो अपने वर्ण परिवर्तन के लिए, स्वयं की इच्छा और स्वतंत्रता का दुरूपयोग नहीं करेगा?'वर्ण निर्धारण के लिए किसी की अनुमति की क्या आवश्यकता ?'

अक्षय का प्रश्न अभी भी उत्तर मांगता है | उसके अनुसार, **"व्यावहारिक जीवन में हम इतने समाज निरपेक्ष नहीं हो सकते महर्षि !"** [4] कितना सही और चुनौती पूर्ण विचार है ! समाज की नियमावली परिवर्तन की इतनी सम्भावना देती है क्या? वर्ण के प्रति जिज्ञासा की जाने पर यदि वह कहता है कि,**'मैं शूद्र-पुत्र होकर भी व्यवसाय से वृति से ब्राह्मण हूँ तो कोई ब्राहमण मेरे इस नए वर्ण को स्वीकार करेगा?"[5]**

समस्या तो बहुत पेचीदा है | परन्तु उत्तर देने वाला चरित्र (ऋषि धौम्य) बहुत सादगी से पूर्ण सात्विकता से भरा समाधान कहता है, "यह परिवर्तन की स्थिति है इसे आक्रोश से नहीं, विश्लेषण से समझने का प्रयास करो ।कितने वैचारिक धरातल है समाज को समझने और उसकी रचनात्मक प्रक्रियाओं के | पर प्रश्न भी उतने ही हैं | यहाँ यह विचार मुख्य नहीं है कि अक्षय का वर्ण एवं जाति का निर्णय कैसे होगा ? प्रश्न यह है कि सामाजिक सिद्धांतों को समझने के लिए कितने भिन्न-भिन्न आयामों को समझना पड़ता है | ..अक्षय जो एक लेपक था,अब वास्तुकार है और ऋषि धौम्य की परिकल्पना में वह शीघ्र ही और विकास करेगा | बहुत संभव है कि वह वास्तु-चिन्तक का कार्य कर मनीषियों की श्रेणी में प्रविष्ट हो जाये | वह चिंतन करे–भूमि का, वायुमंडल का,भू-गर्भ का | देश के ऐतिहासिक-भौगोलिक, सांस्कृतिक-अध्यात्मिक पक्षों का|... फिर उसे धन का मोह भी नहीं रहेगा |' अक्षय के यह पूछने पर कि जरुरी तो नहीं कि जो अतीत में कंगाल था भविष्य में भी कंगाल हो जाये| **ऋषि का समाधान हुआ कि, "विकास का अंतिम चरण तो धन से अनासक्ति और धन विसर्जन में ही है |.... अपना जितना विकास कर तुम वर्तमान में पहुंचे हो, यह पर्याप्त संकेत है, कि भविष्य में और भी विकास करोगे |"** [6]

` उपरोक्त प्रकरण बहुत सारगर्भित है | व्यक्ति के विकास के कितने सोपान हैं जिन्हें वह अपनी निष्ठा और चेष्ठा से प्राप्त करता चलता है | एक स्थान पर महामुनि व्यास भी वन में जब पांड्वो के पास जाते हैं तो किसी चर्चा में कहते हैं, **"यह जीवन एक बीहड़ यात्रा है ! कैसे-कैसे उतार चढ़ाव आते हैं| यात्री तो वही है, जो निरंतर ऊपर चढ़ता जाए | कहीं पतित न हो | कहीं स्खलित न हो | स्वयं ऊपर चढ़ने के लिए किसी और को धक्का न दे | स्वयं आगे बढ़े और ऐसा मार्ग बनाये जिससे अन्य लोग भी अपनी चढ़ाई चढ़ सके|"[7]**

समाज के कितने स्वीकृत मानदंड हैं, जिनपर काल व स्थितियों के अनुसार प्रभाव तथा परिवर्तन अनिवार्य और अपरिहार्य हो जाते हैं ? क्यों व्यक्ति अपने कर्मों को समाज की स्वीकृति दिलाना चाहता है ? रूढिगत सिद्धांत क्यों व्यक्ति विकास में बाधा बन जाते हैं ? क्या समाज के मनीषी भी इन मूल्यों और सिंद्धांतो के निर्माण में अपना योगदान देते हैं ? क्यों समाज के बौद्धिक वर्ग का उत्तरदायित्व बढ़ जाता है ? सामाजिक संतुलन के लिए व्यक्ति और समाज का सामानांतर विकास क्यों आवश्यक है?

महासमर काल और वर्तमान परिवेश एवं समस्याएं–एक ही धरातल पर खड़ी लगती हैं | आज भी समाज भिन्न जातिगत विभागों में बंटा है | यद्यपि भीम के मुख से-रचनाकार जाति से ऊँचे उठने की संभावनाओं का उदाहरण देते हैं,

"मानसिक विकास और वृति परिवर्तन से श्रेणियां और वर्ण तो अपने आप परिवर्तित हो जातें हैं| कौन अपना विकास नहीं चाहता ?"...."विश्वामित्र क्षत्रिय राजा होते हुए ऋषि बने, नहुष क्षत्रिय होते हुए सर्प हुए, हस्तिनापुर में कर्ण सूत होते हुए क्षत्रिय हो गया, और संजय सूत होने पर भी मुझे लगता है ब्राह्मण हो जायेगा |"[8] परन्तु समाज के कितने ही मनस्वी गुरु एवं ब्राह्मण इसे स्वीकृति नहीं देते| और समाज इस परम्परागत विचारधारा का विश्लेषण करते हुए झिझकता है तथा नये स्वरुप को नहीं अपनाता फलत: विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है| वर्तमान (2014-2019) मोदी सरकार का भी तो यही नारा है, **'सबका साथ सबका विकास', और यह बात जातियों से कहीं ऊपर है|**

जातिगत विभिन्नताओं और (भीम तथा राक्षसी हिडिम्बा पुत्र) घटोत्कच के बारे में जिज्ञासा करती पत्नी परसवी कि, 'वह उड़ सकता है क्या ?' महात्मा विदुर कहते हैं, "राक्षस है ! का क्या अर्थ ? उसकी भुजाओं के स्थान पर पंख हैं क्या ?" विदुर हंसते हैं, **"है तो वह मनुष्य ही ! विभिन्न प्रदेशों में रहने से, विभिन्न मानव-जातियों में जन्म लेने से, तथा विभिन्न प्रकार के जीवन दर्शन अपना लेने से, मनुष्य–समूहों के नाम तो भिन्न हो सकते हैं, उनकी क्षमताओं में भेद नहीं होता |"**[9] परन्तु सभी ऐसा नहीं विचारते और न ही इतनी उदारता दर्शाते है| आज भी समाज इस प्रकार के विभाजन से पूर्णत ग्रस्त है|

गोस्वामी तुलसीदास जी के समय में भी वर्ग संघर्षो से समाज विभाजित था|तुलसीदास ने एक दास के रूप में तो रामकथा लिखी ही, साथ ही एक जिम्मेदार बुद्धिजीवी का कर्तव्य निभाते हुए अपनी रचना द्वारा राम और शिव को एक दूसरे द्वारा पूजित करवा कर धर्म और देवों के नाम पर बंटे समाज में समन्वय स्थापित करने का साधु- प्रयास किया| उदाहरण प्रस्तुत है ,-

"होई अकाम जो छल तजि सेईही|
भगती मोरी तेहि संकर देईहि|
मम कृत सेतु जो दरसन करही|
सो बिनु श्रम भवसागर तरही|"[10]

'यद्यपि भारतीय समाज का ढांचा प्राचीन काल से वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा पर ही आधारित रहा है| व्यवस्था के इस मेरुदंड का ह्रास मुगलों ओर तुर्कों से पूर्व वर्जयानियों, तांत्रिकों तथा नवीन मतावलंबियों ने तो किया ही था, पर इस्लाम युग के कुछ तथाकथित सुधारक कवियों के तीष्ण प्रहारों से यह और भी खोखला हो गया| हिन्दू तथा इस्लाम दोनों मतों में व्यापक समान तत्वों को लेकर समन्वय चाहने वाले सुधारवादी संतकवि कबीर तथा जायसी आदि ने इस पर कड़े प्रहार किये| इन सबका प्रयास रुढ़िग्रस्त वर्णाश्रम धर्म का उच्छेद करना ही था| इस दशा से प्रभावित होकर ही तुलसीदास ने **पुन: वर्ण व्यवस्था के विश्वास का उद्धार करके उच्च तथा नीच दोनों वर्णों में प्रेम बड़ा कर समन्वय उत्पन्न करने की चेष्ठा की है|"** [11]

वर्तमान भारतीय समाज अभी भी इसी प्रकार के विभाजन से अछूता नहीं है| विकास के कितने अधिक प्रयत्न किये जाते रहे हैं और किये जाते रहने चाहिए| संभव है,तभी हमारा समाज इस समस्या से विलग हो सकेगा| घटोत्कच वर्तमान भारतीय आदिवासिओं का प्रतिनिधि सा लगता है| वह एक प्रकरण में भीम के पूछने पर कि उसकी माँ ने उसे क्या सिखाया है ,कहता है , "मैं एकांत वन में रह, भूले भटके, सामने आ जाने वाले मनुष्य का मांस खाने वाला राक्षस नहीं हूँ पिताजी !..**माँ ने अपनी बुद्धि और क्षमता भर मुझे अच्छे संस्कार दिए हैं| मेरे मित्रों को देखकर आप समझ गये होंगे कि हम शेष मानवों से पृथक वन में एकांतवास करने वाले प्राणी नहीं हैं| हम स्वयं बृहत मानव समाज का अंग बनने का ही प्रयत्न नहीं कर रहे, वरन अन्य वनवासियों को भी उनकी एकांत गुफाओं से निकालने का प्रयत्न कर रहे हैं |.....हम यह मानते हैं कि जीवन अखंड और समग्र है| उसमें खंड अथवा वर्ग नही हैं| ग्राम अथवा नगर में रहने से लोगों की अजीविकाएं पृथक होतीं हैं| व्यावसायिक कारणों से, दिनचर्या भिन्न होती है, किन्तु उनके समाज पृथक नहीं होते |"**[12]कितना सटीक चित्रण है| जैसे वर्तमान का ही दृश्य समक्ष उभर आया हो| रचना कार समसामयिकता को साथ साथ तर्क देता चल रहा है|

समाज में फैली समस्यायें समाज के विकास को अवरुद्ध करती हैं और व्यक्ति की विचारधारा और जीवन पद्धति को भी दुष्प्रभावित करतीं हैं|

व्यक्ति-विभाजन के एक अन्य प्रकरण मेंजब नृशंस होकर द्रोणाचार्य ने एकलव्य से दक्षिणा में उसका दाहिने हाथ का अंगुष्ठ माँगा। जिसका उनकी औरकोई देय नहीं था | तो प्रतिक्रिया स्वरुप युधिष्ठिर ने कहा कि, **"स्पर्धा अपने विकास में होनी चाहिए, दूसरे के ह्रास में नहीं।"**[13] एक पात्र व्यक्ति की स्वार्थ वृति के चलते इतना नृशंस कृत्य करते हुए भी नहीं हिचकता और दूसरा पात्र न्याय के पथ पर चलता हुआ इसे अन्याय का नाम देता है |

समाज में फैली समस्यायें समाज के विकास को अवरुद्ध करती हैं और व्यक्ति की विचारधारा और जीवन पद्धति को भी दुष्प्रभावित करतीं हैं |

महारथी कर्ण भी ऐसा सोचते हैं, 'मानवों के वर्ण–भेद कर,वर्ग–भेद कर, कुछ को हीन, कुछ को श्रेष्ठ मानने का क्या अर्थ है ? समाज में कुछ लोगों के लिए सुविधाएँ क्यों जुटाई जाती हैं, और कुछ की इतनी उपेक्षा क्यों की जाती है?' यह एक व्यक्ति की दृष्टि है | अब समाज के भाग को जानते हैं | कर्ण के पालक पिता अधिरथ उसके प्रश्न और समस्या का समाधान करते हुए उसे तर्क देते है, "विद्या का अधिकार तो सबको है , पुत्र ! क्योंकि अपने विकास का अधिकार तो समस्त जीवों को है—शारीरिक, मानसिक और आर्थिक विकास | अपनी आजीविका अर्जित करने के लिए भी विद्या–प्राप्ति का अधिकार सबको है | किन्तु इसके पश्चात् भी **ज्ञान, चेतना तथा शारीरिक और मानसिक कौशल के अनेक क्षेत्र हैं; जिनके विषय में सामाजिक नेतृत्व यह तय करता है कि कौन सा व्यक्ति, कौन सी विद्या ग्रहण कर, समाज के लिए अधिक उपयोगी होगा |'..**

'हमारी निष्ठा व्यक्तियों के प्रति नहीं | मैं चाहता हूँ कि तुम भी इस तथ्य को पहचानो| अपने स्थान और धर्म को समझो | हमारा अपना ज्ञान ही अंतिम सत्य नहीं होता | हम जिसे अपना अहित मान बैठते हैं-बहुत संभव है कि वह हमारे हित से भी बड़ा हितैषी हो|'

महासमर में एक पात्र है समंग और उसकी पत्नी चपला| उसकी पुत्रवधू व् उसका पति दोनों (अर्थात उसका बेटा) हस्तिनापुर की चकाचौंध में अपने जीवन की संभावनाओं को खोजने चले जाते हैं | चपला अपने पुत्र मोह में इस विषय को लेकर कुंती के पास आती है | उसके पुत्र और उसके प्रति मोह के विषय में सुनकर वह उसे कहती है कि इतने मोह की अब व्यस्क पुत्र के प्रति आवश्यकता नहीं | समय के साथ व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं का भान होना ही चाहिए| कुंती के अनुसार, **"ईश्वर ने इस परिवर्तनशील संसार में बहुत सारे भाव और बहुत सारे पदार्थ बनाये हैं और उन सबकी आवश्यकता भी है; किन्तु इतनी बुद्धि भी मनुष्य को दी है कि वह निर्णय कर सके कि उसे किसका उपयोग कब करना है और कब तक करना है |"** .....कुंती आगे कहती हैं, "**हमारा जीवन एक धारा के समान है | अपने उदगम से ले कर अपने संगम तक की यात्रा की परिस्थितियाँ एक-सी नहीं होतीं | यात्रा का प्रत्येक पड़ाव एक नई चुनौती ले कर आता है, और हमारे कर्तव्य परिवर्तित होते रहते हैं|** सम्बन्ध बदलते रहते हैं | जीवन का रूप बदलता रहता है | हमें इस परिवर्तन को स्वीकार करना चाहिए और स्वयं को उसके अनुरूप ढालना चाहिए, न स्वयं विक्षिप्त होना चाहिए, न किसी और को विक्षिप्त करना चाहिए |" आगे चपला को समझाते हुए कुंती परामर्श देती हैं, "**तुम अपना स्वतंत्र और आत्मनिर्भर जीवन जियो चपला ! पराश्रित जीवन क्यों जीना चाहती हो ?....**"तुमने अपनी संतान के प्रति अपना कर्तव्य पूर्ण किया | **अब अपना विकास करो | अपना वह जीवन जियो, जो तुम बच्चों के पालन पोषण के दायित्व के कारण अब तक जी नहीं सकी थी | हम अपनी संतान को समर्थ इसलिए नहीं बनाते कि अपने मोह के बन्धनों में उनको बांध कर उनके सामर्थ्य को कुंठित करेंगे |"** [14]

उपसंहार(conclusion)

समाज व्यक्ति कोइ द्वारा ही रचित है और आश्चर्य जनक रूप से वह समान रूप से उतना ही शक्ति संपन्न भी है और प्रभावी भी। उसकी अवहेलना नही की जा सकती। तो क्या करे व्यक्ति? अपनी प्रवृतियों को कैसे दिशा निर्देश दे ?समाज की कल्याणकारी संकल्पना के लिए पितामाह भीष्म दुर्योधन को सात्विकता और पाशविकता का अंतर बताते हुए विकास की और बढ़ने का गुरु मंत्र देना चाहते हैं, "**हमें एक स्थान से चलकर दूसरे स्थान तक पहुंचना है, तो हमें अपने गंतव्य की और चलना पड़ेगा .....किन्तु हम उस दिशा में गतिशील रहें, ध्यान रखना होगा| हम शीघ्र अथवा विलम्ब से पहुँच ही जायेंगे | ..किन्तु यदि हम अपना चलना बंद कर, उस गंतव्य की ओर बढ़ने वाले अन्य लोगों को रोकने के प्रयत्न में लग जायेंगे, तो बहुत संभव है कि वे लोग अपने गंतव्य पर कुछ विलम्ब से पहुंचे किन्तु इतना ध्रुव निश्चित है कि हम अपने गंतव्य तक कभी नहीं पहुंचेंगे|"..**'परमश्रेष्ठ बनने के लिए तुम्हें अपनी क्षमता का विकास करना चाहिए| जीवन में

सदा दो दृष्टिकोण रहे हैं; एक है निर्माण का और दूसरा विध्वंस का| आत्म निर्माण करने वाले लोगों ने सदा सात्विक और सुखी जीवन जिया है|'..... 'प्रकृति ने इतने ग्रह बनाये हैं, सब अपनी अपनी कक्षा में ही चलते हैं और अपना गंतव्य खोजते हैं |कोई किसी को रोकने का प्रयत्न नहीं करता अन्यथा सर्वनाश की सम्भावना हो जाती |

उपरोक्त संभाषण क्या आज की पीढ़ी के लिए भी अनिवार्य, उपयोगी और कल्याणकारी नहीं | समाज को अच्छे और सच्चे व्यक्तियों और सदाचरण करने वाले सात्विक लोगों की सदैव आवश्यकता होती है, जिनका संबल पाकर समाज अपने सांस्कृतिक और सौन्दर्यात्मक रूप को पा सकें |

सन्दर्भ सूची (References)

1. कोहलीनरेंद्र,महासमर 4, पृष्ठ 96.
2. कोहली नरेंद्र,महासमर 4, पृष्ठ 97.
3. कोहली नरेंद्र,महासमर 4, पृष्ठ 97.
4. कोहली नरेंद्र,महासमर 4, पृष्ठ 97.
5. कोहली नरेंद्र,महासमर 4, पृष्ठ 97.
6. कोहली,नरेंद्र, महासमर 4, पृष्ठ 99-100.
7. कोहली नरेंद्र,महासमर 6,पृष्ठ 216.
8. कोहली,नरेंद्र महासमर4,पृष्ठ 35.
9. कोहली नरेंद्र ,महासमर 5, पृष्ठ 345.
10. तुलसीदास, रामचरित मानस, लंका कांड.
11. शर्मा चरणदास, तुलसीदास काव्य में नैतिक मूल्य, पृष्ठ 104,107.
12. कोहली नरेंद्र,महासमर 5,पृष्ठ 231.
13. कोहली नरेंद्र , महासमर 2 , पृष्ठ 211.
14. कोहली नरेंद्र, 6,पृष्ठ 209-210.

मंजू अरोरा
अनुसंधित्सु-कला एवं भाषा विभाग,लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी,फगवाड़ा,पंजाब.

LBP PUBLICATION